UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186256
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 G97D5 Accession No. G.H. 2626

Author गुरु, राजेश्वर श्री.

Title दुर्गावती

This book should be returned on or before the date last marked below.

दुर्गावती

(खण्ड काव्य)

संपादक

डॉ० राजेश्वर गुरु एम० ए० पी० एच० डी०

(प्रिंसिपल, शासकीय महाविद्यालय, अम्बिकापुर)

प्रकाशक

भारत प्रकाशन

जवाहरगंज, जबलपुर

मूल्य ७५ न० पै०

प्रकाशक—

भारत प्रकाशन

जवाहरगंज, जबलपुर.

मुद्रक—

आजाद प्रेस, मालवीय पथ, जबलपुर.

समर्पण

डॉ शंकरदयाल शर्मा

(मुख्य मंत्री, भोपाल)

को

आभार

तेरह वर्ष बाद दुर्गावती के दूसरे संस्करण का अवसर आया है।

इस संस्करण में मैंने यहाँ वहाँ कुछ परिवर्तन-परिवर्धन किये हैं। मैं समझता हूँ कि इनका कर्ता कवि ही है, आलोचक नहीं।

दुर्गावती को अब तक आलोचक, पाठकों ने जैसा स्वीकार किया है, उसके लिए मेरा उनके प्रति विनम्र आभार! संशोधित संस्करण उन्हें और अधिक रुचिकर होगा, यह आशा है।

भोपाल

—राजेश्वर गुरु

पहले संस्करण से:—

विज्ञप्ति

'दुर्गावती' मेरी पहली रचना है। प्रकाशन के क्रम से यह 'शेफाली' के बाद पाठकों के सामने आ रही है, यद्यपि इसका रचना-काल 'शेफाली' की प्रायः सभी कविताओं के पहले का है। सन् १९३७ के शुरू में पुस्तक तैयार हो गई थी और उसी वर्ष रायपुर से निकलने वाले 'उत्थान' में कुछ अङ्कों में अधिकांश प्रकाशित हो चुका था।

प्रयास मेरे काव्य जीवन के प्रारंभ का है। इसमें सौष्ठव न हो, तब भी सद्भावना अवश्य है। काव्य तथा उसकी कला के बारे में अपनी ओर से कुछ न कहकर 'शेफाली' के प्रवेश में सम्मान्य भाई 'अज्ञेय जी' ने जो कहा है, उसकी ओर इशारा करता हूँ।

यदि इस कविता से रानी के जीवन के प्रति श्रद्धा प्रकट कर सका होऊँ और पाठकों का मनोरंजन कर सकूं, तो सुखी होऊंगा।

जबलपुर,
दीपावली, १९४०।

—राजेश्वर

विधवा

करुण संध्या घिरी सावन की निपट सुनसान,
सूनी धरा, सूना गगन,
नीरव पक्षियों का गान,
निश्चल पवन;
पाँतें बकों की नभ में नहीं,
पर से मिलाकर पर कि उड़ती जा रही हों जो,
न अवली पंक्षियों की कहीं,
नभ की नाट्यशाला में कि जुड़ती गा रही हों जो;
न कोई सारसों का दल,
न कोई साँस की हलचल,
मलिन संध्या, निमीलित कमल,
सीमाहीन नभ के अंक में केवल,
क्षितिज से क्षितिज तक विस्तीर्ण
छाये हुए हैं बादल

असित, सित, श्याम, धूमिल,
जो सरकते जा रहे हैं
हो कभी सित-विरल, फिर हो सघन-श्यामल,
जो सरकते हैं गगन के वक्ष पर
स्वच्छन्द, मन्द-स्पन्द, उन्मद
झूमते मधुपापियों से
कर कभी गर्जन
कभी भर तड़ित्-भय, दिग्भ्रान्ति:
छाई है भयावह शान्ति
ज्यों करुणाभरी सहमी हुई,
इस छोर से लेकर धरा के
गगन के उस छोर तक है व्याप्त
जैसे हो किसी तूफान के पहले
प्रलय की सूचना जैसी
नियति निस्तब्ध है सारी,
दिशाएँ मौन हैं सब
है धरा निर्वाक, सहमी हुई सी, भयभीत सी।

× × ×

है पवन गतिमय,
किन्तु उसमें नहीं किंचित राग 'सन सन'
पल्लवों के सम्पुटों में गीत मर्मर् सो गया है,
हो सशंकित प्रबल भावी किसी भय से
खगों के निश्वास-स्वर
लघु-नीड में सिमटे रुके हैं,
हो चुके हैं शान्त विधवा श्याम वसना साँझ में
संसार के व्यापार सारे,

सर्प से उस मार्ग पर कोई नहीं है,
और कोई स्वर नहीं है तैरता उन पवन लहरों पर
कि सब निस्तब्ध, निस्स्वन है;
अगर है शब्द कोई काँपता निस्तब्धता को चीरकर
मँझधार में, इस तीर पर
या धँस रहा जो दूर वन के हृदय में,
या क्रूर निष्ठुर हँस रहा प्रासाद के प्राचीर पर,
तो वह दशों दिशि प्रतिध्वनित करता हुआ
है मन्द-स्वर मेकल-सुता का,
जो कि पी बरसात की अनवरत मूसलधार
है बन गई ज्यों छेड़े हुए वनराज की हुंकार
अपना वक्ष फैला क्रोध के प्रश्वास में जो
चाहता हो बाँधना आकाश पृथ्वी:
झूमती मदमत्त हो उत्तुंग लहरें
तीर के पाषाण से टकरा, बिखर
चीत्कार बन छूतीं गगन को;
और फेनिल जल किसी अहिराज-सा
जो मार्ग में आया उसे विध्वंस कर
जैसे किसी आवेश के प्रेरे
उछलता, फुफकता
है जा रहा निर्बाध गति से;
जान पड़ता है
कि नीचे जल
गगन में सघन-घन
बन मृत्यु करने धरा को निज ग्रास
मुँह बाये प्रलय का साज ले आये हुए हैं।

× × ×

तरंगें फन मारती हैं,
तीर के उस दीप्त गौरव-भवन के प्राचीर पर,
है जो चमकता सांध्य की लघु कांति में भी
रखे तम में किसी हीरक सा,
किरन पा एक ही जो
दमक उठता है असंख्यों रश्मियों में छिन्न होकर;
छू सुदृढ़ दीवार उस प्रासाद की
फुफकारती, विष फेंकती
रेवा छलकती लौटती निष्फल
असंख्यों जलकनों में छिन्न होकर
और विष की उफनती हिम-श्वेत बूँदें
बिखरकर छा रहीं हैं
उच्चस्थ उस वातायनी को;
मनोहारी वाटिका नीचे
जहाँ के मसृण कुसुमों की चुराकर सुरभि
वितरित कर रहे हैं विश्व भर को पवन के उन्मत्त झोंके;
झिलमिलाती सौध वह,
जिसके शिखर पर केतु-पट लहरा रहा है
अरुण—पाटल सा, उषा सा, अग्नि सा

× × ×

हो गई संध्या शेष
सहसा दामिनी से जल उठे सारे महल के दीप,
जिनकी दीप्ति में दीखी
खड़ी वातायनी पर एक देवी मलिन-वदना
वाम कर पर धर चिबुक का भार
दक्षिण धरे पट पर

आंख में पा.ास भरे
मुख पर शिशिर की शुष्कता ले
दीर्घ सी, उत्तप्त सी निश्वास में कर निहित आतप
वह बनी कारुण्य की प्रतिमा खड़ी थी,
किन्तु उस कारुण्य घन से शनैः छन छन आ रही थी
ज्योति विधु के हास की सी;
नयन अपलक देखते थे गरजती रेवा ,
न उनमें किन्तु कुछ भी देखने का भाव था;
निष्कलुष मुख पर स्पष्ट अंकित थीं
व्यथा की, वेदना-गाम्भीर्य की अभिशप्त रेखाएँ,
कि जैसे मलिनता विधु अंक में,
या सुधा के घट में कि जैसे बूँद हो विष की;
खड़ी थी मृत्तिका के पिंड सी निश्चेष्ट
वह सुधिहीन थी,
वह दीन थी;
कर चूर नीरवता
किसी का क्षीण कम्पित स्वर
कि जैसे हो जरा का
और जिसमें वेदना हो, याचना हो दीन,
हो आग्रह त्वरा का,
कान में आ पड़ा रानी के अचानक
"आह कोई है यहाँ पर·····प्यास !"
सहसा ध्यान टूटा;
तनिक चौंकी
स्वप्न से जैसे कि जागी,
शब्द-पथ की ओर फिरकर देख,

भर निश्वास गहरी चली सहसा
और क्षण में पहुँच अन्तिम छोर पर उस कक्ष के,
थी जहाँ शय्या रुग्ण दलपतिशाह की,
बोली कि—
'बस क्या सो चुके !
बाधक न किंचित श्वास का स्वर
आपकी सुकुमार निद्रा में कहीं हो,
इसलिए वातायनी पर मैं खड़ी थी,
और सेवक भी यहाँ से दूर सारे कर दिये हैं।"
यह कहा
फिर भर कनक के पात्र में पय
एक कर से उन्हें उठने के लिए देकर सहारा
दूसरे से पात्र उनके अधर तक वह ले गई।
वह वीर राजा गढ़ा-मंडला राज्य का
था लग्न-बंधन ही कि जिसका
वीरता की एक गाथा अमर
देवी रुक्मणी के हरण की सी,
या कि जैसे शूर पृथ्वीराज ने
संयोगिता का हरण हो अपमान विचलित था किया
वैसे किया था मान-मर्दन
शाह दलपति ने चँदेलों का
हरण उनसे वहाँ की कर कुमारी;
आज वह ही हार दारुण मौत से
घड़ियाँ अखीरी गिन रहा था;
शक्तिशाली !
आज वह पय-पान करने में निपट निःशक्त था,

ज्यों शक्ति उस पर कर रही हो व्यंग;
विद्युत नयन-युग,
जिसका कि भ्रू निक्षेप करता
शत्रुओं के हृदय में रोमांच सा गहरा
तड़ित् की ज्योति अपनी आज खोता जा रहा था;
सिंह का सा-स्वर,
कि जिसकी सहज भीषण गर्जना से
संचरित होता मृतों में नया जीवन,
आज होते शान्त ज्वालामुखी-सा वह
शान्त होता जा रहा था,.....
पान कर पय,
स्वस्थ होकर
धर अधर पर हास की लघु रेख
जैसे अभी बरसे हुए बादल की उदासी को हटा
हँस दे किरन हलकी,
जरा सा देख कातर मृगी-सा
नृप ने कहा अति क्षीण गति में, क्षीण स्वर में,
"नहीं, मैं तो बन्द कर आँखें पड़ा था मौन
सोया था नहीं,
था सोचता यह—
कौन सा उपहार भावी ला रही मेरे लिए है;
ज्ञात होता है,
कि अंतिम रात है यह,
प्रात मेरी साँस की अभिसारिकाएँ सो रही होंगी,
अधूरी कामनाओं की अतृप्ता तारिकाएँ रो रही होंगी
दिवस के अंक में मुँह ढाँप

रोती ओस के आँसू;
कि ऐसी नींद सोऊँगा
जगाएगा मुझे कोई नहीं"—
मत! अशुभ कहिए, नाथ,
जीवन नहीं वह लज्जावती है,
मृत्यु के हिम-स्पर्श से जो
चेतना खो शिशिर-सूखे-पत्र सा निर्जीव, जड़ हो जाय;
यह लघु सा खिलौना नहीं
जिसको खेलता है काल
वैसे ही कि जैसे खेलता है स्वरंजन हित बनाकर नन्हें घरौंदे
खेल उनको नष्ट करने का
निपट नादान बालक;
मूल्य जीवन का नहीं है
श्वास के आगम-निगम की अगिन संख्या से,
मगर उन कुछ क्षणों से है,
कि जिनमें श्वास का अवरोध कर हम
जिंदगी का खेल दारुण मौत के संग खेलते हैं,
माप जीवन का यही है;
कौन कहता, अनृत है यह,
शाप यह जीवन नहीं है,
मानवों को प्राप्त यह वरदान है अक्षय,
अमृत है यह,
जिसे पा हम धरा के जीव
होते शक्त करने में कभी ऐसा तनिक कुछ
जो बना पाता न स्मृति-क्षय
हमें युग युग विश्व-उर में;

आप कहते हैं कि·····
ऐसी नींद सोऊँगा, जगायेगा मुझे कोई नहीं—
पर कल्पना तो कीजिये
रवि हुआ अस्तगत वहाँ,
इस ओर तम की स्याह चादर आ गई ढकने धरा को;
ज्ञात है यह आपको तो
आपके संकेत में ही खोजता है आज मंडला भाग्य अपना,
आप में ही देखते हैं
गोंड अपने शान्ति सुख संतोष की आश्वस्तिको;
फिर कहें—
कैसे सहेंगे वे आपके ऐसे वचन की कल्पना भी;
याद होगा,
आप ही ने तो कहा था एक दिन यह—
हमें लड़ना है यहीं को आ रही
दुर्भाग्य की उदंड गर्वीली, लहर से
आज भर कर शक्ति-संचय—
आज फिर नैराश्य कैसा !
आप तज तो दें जरा नैराश्य को, दुर्भावना को !
काल का पैगाम कहते हैं जिसे उद्विग्नतावश आप
वह ज्वर मात्र ही है,
आप नन्हें कीट सा जिसको मसल देंगे।"
"इसे मैं जानता हूँ, याद है यह—
जल किसी बरसात का,
पाकर तनिक सी धरा कोमल
किये निज अधिकार उस पर
भरे गति में वेग तीखा

काट पथ के पत्थरों को, शिलाओं, क पर्वतों को,
अखिल वसुधा को अगम जलमय किया सा चाहता है।
जानता हूँ—
यवन दिल्ली में जमाकर जड़ें अपनी दृढ़
करेंगे कोशिशें अविराम यह—
फैला सकें इस देश भर में
शाख, पल्लव, फूल, फल
अपनी महत्वाकांक्षा के वृक्ष के;
यह सत्य है,
वह दिनो नहीं है दूर,
जिस दिन आफतों का भार मंडला राज्य पर भी आ रहा है:
किन्तु कैसी बेबसी है, हाय,
तुम ज्वर-मात्र कहती हो जिसे
वह क्षय मुझे हर एक दिन, हर घड़ी
तिल तिल खा रहा है;
कौन जाने कब पिशाचित मौत आकर
खींच मेरे गले की यह रज्जु ढीली
बाँध अपने पाश में,
दे प्यार से कह—भले मेरे ग्रास !
देखो, हो गया है मन शिथिल, तन जीर्ण-जर्जर
शक्ति किंचित भी नहीं है शेष
जो मैं कर सकूँ कुछ भी दिनों को दूर
सिर पर खड़े इन जमदूत को;
मैं चला, मेरे प्राण की भी प्राण, रानी !
दो विदा तुम मुझे हंसकर
शान्ति से मैं जा सकूँ,

तुम रोक पाओगी नहीं मुझको,
रुकूँ मैं स्वयं, बोलो कैसे, कहो !"
यह क्या !
अरे हो चले हैं स्पन्दन हृदय के मन्द,
चंचल मृगी से द्युतिमान लोचन बन्द,
वाणी मूक—
कैसा करुण जीवन-मरण का यह द्वन्द !
भर कर चाह
आँखें प्यार की, सौंदर्य की तस्वीर अपनी पुतलियों पर आँकती हैं
और निष्ठुर मरण
तम के एक धुँधले चीर से
तस्वीर को करता नयन से शनैः ओझल,
चूर नीरवता किये.
वाणी हृदय की बात प्रिय के हृदय तक पहुँचा रही है,
और देखा,
काल के हिम-परस से हो चला स्वर निर्जीव,
कर कुछ शक्ति संचय कहा दलपति ने:
"प्रिये, मैं जा रहा हूँ,
देखना,
वह वृक्ष
जिसका बीज-रोपण शौर्य, बल, बलि से
हमारे पूर्वजों ने था किया,
इन गोंड वीरों ने जिसे निज रक्त से सींचा,
हमारा धर्म सा वह पूत मंडला,
कहीं यवनों के न पापी रक्त-प्यासे करों में पड़ जाय,
कैसा शोक है, मैं रह न पाऊँगा,

कि जब ये यवन डाकू विभव-लोलुप
निरंकुश गज से हमें भी रौंदने इस ओर आयेंगे,
मगर तब गोंड चींटी से महागज का मरण बन जाँय,
दुर्गे, तब तुम्हारी भृकुटि के तीखे मरण-शर
शत्रुओं के हृदय में गड़ जायँ,
जब तक एक भी जन रहे जीवित,
वे न अन्दर आ सकें इस राज्य के।
मैं अब हो चुका अति-शिथिल, ज्यादा क्या कहूँ.....
है कहाँ मेरा वीर.
अंतिम बार उसको चूम लूँ
ले लूँ विदा निज लाल से....."
रानी गई उस पार्श्ववाले कक्ष में
अति शीघ्र लौटी अंक में शिशु को लिये;
"क्या सो रहा है, उसे सोने दो।
भला क्या जानता है वह,
कि उसकी सुप्ति के संग आज
उसका भाग्य सोता जा रहा है,
आज उसके चैन सुख का सत्य उससे दूर होता जा रहा है;
किन्तु तुम तो हो, उसे भय कौन हो फिर"..... .....
कह बहुत ही मंद स्वर में
चूम अंतिम बार सोते ल ल का मुख
एक ठंडी आह ले हो गये पल भर मौन
फिर उस दीप से
जो एक क्षण में शमित होगा
सजग होकर डाल चारों ओर
इच्छा भरी चिर अनुराग वाली दृष्टि से वे बोले कि—

—मैं . अब ..चला
दुर्गे ! पुत्र सा रखना प्रजा को
पुत्र सा, अपने हृदय के टूक सा;
करना . क्षमा
अपराध मेरे हों...अगर कोई
च...ला मैं... ..वि.....दा..... "
फिर सब मौन !
दीपक बुझ गया, हा रुक गया संसार
सारे कार्य जग के जल रहे थे उसी गति से अपरिवर्तित,
सिर्फ नभ के घन धरा पर रो रहे थे
नर्मदा कुछ बढ़ी गति से उच्च स्वर कर जा रही थी,
स्तब्ध उस प्रासाद में उर चीरनेवाला रुदन था

—— × ——

मा

[रानी दुर्गा और सप्तवर्षीय कुमार, वीरनारायण]

"हर रानी के राजा, राजा के रानी,
बतलाती है ऐसा ही हमें कहानी,
पर जान न पाया हूँ अब तक बतला दो,
मा ! कौन यहाँ का राजा जो तुम रानी ?"

"सच, नहीं जानता, यह कैसी नादानी,
राजा हैं तेरे तात और मा रानी"
कह गई थामकर उठा ज्वार मानस का,
पर छलक पड़ा बरबस आँखों में पानी।

"मा, री ! क्यों, आँखों में नीर बहा है ?
सच कह तो दो, क्या किसने तुम्हें कहा है ?
पर अभी अभी हँसती थीं अब क्यों रोईं,
क्या बहुत दिनों से कोई दुःख रहा है ?

"मैं तुम्हें देखता हूँ, अक्सर रोती हो,
कहतीं, जगतीं सब रात, नहीं सोती हो.
है नहीं खेलने संग तुम्हारे कोई,
बस इसीलिए ही क्या अधीर होती हो ?"

"ना, वे घड़ियाँ ही आकर मुझे रुलातीं,
जब याद मुझे राजा की है हो आती।"
"हूँ हरदम जैसे मैं तुमसे भय खाता,
क्या नाममात्र ही उनका तुम्हें डराता.

कितने दिन में कहती हो, वे आयेंगे,
कुछ नई नई चीजें मुझको लायेंगे,
मत शोक करो, क्या आते अभी न होंगे।
कह दूँगा, फिर वे क्रोधित कभी न होंगे।"

खारे जल में जो जो उद्गार निकाले
निश्वासों में प्राणों का प्यार सँभाले.
अपने को रोक न पाई, धीरज छूटा,
उर की करुणा का सोता सहसा फूटा,

"बेटा ! तुझसे कितने दिन और छिपाऊँ !
कब आयेंगे वे, कैसे तुझे बताऊँ !
वे गये, जहाँ से लौट न कोई आते,
फिर नई चीज़ वे कैसे तुझको लाते !

सच ही होती है बेटा ! सभी कहानी—
हर रानी के राजा, राजा के रानी,
राजा होकर नाराज़ चले जाते हैं,
रोती है आँसू बहा बहाकर रानी।'

आँखों में आँसू पीकर वह मुसकाई,
पर इससे ज्यादा और नहीं कह पाई;
"चुप क्यों, मा ! बतलादो, फिर क्या होता है,
रानी रोती, क्या राजा भी रोता है ?"

"ना, राजा क्यों रोये ! उसको तो रानी—
सुन्दर-सी ला देती है उसकी नानी;
अच्छे अच्छे बच्चे तो सभी कहीं हैं,
बच्चों की उनको कोई कमी नहीं है;

हैं वहाँ बगीचे, बाग और फुलवारी,
फूलों से महका करती क्यारी क्यारी,
तितली उनपर दिन भर घूमा करती हैं;
परियाँ उनको जी भर चूमा करती हैं;

हर एक तरह के बच्चे मेला करते,
फूलों मे वे हँस हँस कर खेला करते।"
"मा, चलो चलें, हम तुम भी वहीं रहेंगे,
तितली, फूलों, परियों से बात करेंगे।"

"परियों के ढिग, तकलीफ करें, क्यों जायें?
आना हो जिसको, पास हमारे आयें।
तू सोजा, सोने की परियाँ आयेंगी,
तेरे कानों में गीत मधुर गायेंगी।"

"अच्छा थपकी देकर तू मुझे सुला दे,
हाँ, वह मीठी सी लोरी भी तो गा दे"

"हो गई रात आँखों के तारे! सोजा
सो गया नीड़ में पंछी का मृदु गाना,
सोया डालों पर फूलों का मुसकाना,
मेरी गोदी में मेरे प्यारे सो जा!
सो गया सूर्य किरणों को मूँदे कर में,
सो गया कमल सौरभ मूँदे अंतर में,
कर बंद नयन-युग में जग, प्यारे सो जा!
जग-शिशु सोया है, निशि करती रखवारी,
पंखा झलती है पवन सुरभि से भारी,
मैं तुझे निहारूं, राजदुलारे सो जा!'

रानी

अचानक वैधव्य का,
शिशु वीर का,
युवराज की वय—प्राप्ति की लम्बी अवधि तक राज्य का-
सब एक ही क्षण भार रानी पर पड़ा आ;
किन्तु नारी संकटों में, दुखों में भी
धैर्य अपना खो सकी कब ?
आँसुओं मिस बही यदि,
कर्तव्य भूली रो सकी कब ?
जानती थी—
स्वर्ग का है दूत राजा,

और हैं स्वर्गीय सब अधिकार उसके,
किन्तु तब तक ही,
कि जब तक स्वर्ग का संदेश भू पर ला सके वह
कालिमा की घड़ी में आशा बने, मुसका सके वह,
धीरता नैराश्य के क्षण
सत्य, शिव, सौन्दर्यमय को
प्रजा के आकुल हृदय तक गा सके वह,
सिर्फ ईश्वर के लिए अस्तित्व उसका
और मानव ईश का अस्तित्व उसमें पा सके;
प्रतिनिधि प्रजा का,
प्रतिध्वनित यदि कर सके वाणी प्रजा की,
आँक पाये भावनायें सभी उनकी
हृदय की विस्तीर्णता में;
युगों की संचित धरोहर-पूत संस्कृति,
प्रजा के आदर्श जीवन का वही रक्षक,
प्रतिरूप उसके ही हृदय का राज्य की प्रतिमा बनेगी,
इसलिए दूतत्व हो जाये निरंकुशता कहीं मत
भूलकर देवत्व को.
आकर धरा पर वह धरा की वस्तु तो हो जाय,
पर खोकर नहीं अपनत्व को;
वह ज्योति बनकर स्वर्ग से उतरा यहाँ पर

यहाँ आकर कलुष में सन जाय मत,
उसके चरण पर राज्य का कन कन झुके
बस इसलिए वह गर्व से तन जाय मत;
अपनी प्रजा के हृदय-अर्पण को न अपना स्वत्व समझे,
और अपने सौख्य की ही पूर्ति को पूर्णत्व समझे,
मानवों के हृदय की विनती भरी आवाज़
उसके वरद कर के परस-पय से शान्ति पाये,
और जीवन में हुआ एकत्र, कलुषित अपावन
नष्ट होकर क्रान्ति पाये।
जानती थी—
एक वह ही केन्द्र,
जिस पर आज सारे राज्य का अस्तित्व है;
यह परिधि सारे राज्य की
उसके हुए निज धर्म-च्युत
फिर दृढ़ न किंचित रह सकेगी,
और नभ में हुए एकत्रित
विनाशक घनों का रुख देखते
प्रलयंकरी बरसात, आँधी का विकट भय, और आशंका निकट है;
आंसुओं को पी हृदय में
इसलिए जब वीर की संरक्षणी बन
राज्य का सब कार्य, रानी ने लिया अपने करों में

कर दिये प्रारंभ सारे यत्न
बिखरे, निबल अंशों को गठित कर
एक ही दृढ़ सूत्र में आबद्ध करने के लिए;
दूरस्थ वन वन गुहा पर्वत
सघन काली कन्दराओं
और बीहड़ पर्वतों की श्रेणियों के
वासियों को
स्नेह से, औदार्य, सेवा-भाव से,
आत्मीयता के चाव से एकत्र कर
सर्वत्र अपने राज्य की हर साँस में
बंधुत्व समता स्नेह जाग्रत किये;
जिनकी प्रेरणा से
वन्य हिंसक जातियों का हो सका उद्धार,
जिनकी प्रेरणा से
पाशविकता स्पर्श पा कोमल
स्वयं बन गई मानव भूतियों से प्यार,
वन के नियम में आश्वस्त थे जो,
उदर-पोषण में कि पशुवत् व्यस्त थे जो
और बल के दम्भ से अति-ग्रस्त थे जो,
उन्हें अमृत स्नेह का यह मिल गया;
वे एक चिर नव ज्योति-जागृति से चकित से रह गये;
यह प्रेम का संदेश पाकर
परिधि का संकोच हो विस्तार,
खुद ही मनुजता, फिर दिव्यता बन छा चला,
यह सिन्ध प्राणों में
नये उत्साह का बनकर जलधि लहरा चला,

सौभाग्य का, उत्कर्ष का सूरज
प्रदीपित कर चला अपनी चकाचौंधी किरन से
राज्य के प्रत्येक कन को,
जो कि यह सब कर सका,
कब मर सका !
रानी. युगों तक जियो,
कब यह काल प्राणों की चिरंतन ज्योति को है हर सका;
यह गढ़ा मंडला,
महाकोशल,
और भारत वर्ष भी,
अस्तित्व रहते शेष कैसे भूल पायेंगे तुम्हारी कीर्ति-गाथा;
नर्मदा कलकल स्वरों में,
सतपुड़ा, विन्ध्या, सहस्रों-मुख हुए
निज तरुवरों के मरमरों में
सृष्टि के अन्तिम दिवस तक तुम्हें चिरजीवी रखेंगे,
प्रजा के संतुष्ट जी का चिरंतन आशीष
यम के प्रलयकारी कोप से कब डर सका ।

दुर्भाग्य ।

हुआ है सौभाग्य ही कारण सदा दुर्भाग्य का,
उत्थान ने, उत्कर्ष ने ही किया आह्वानित पतन को,
विभव का वरदान टूटा शाप बनकर;
और चिन्तामुक्त, सुखमय, हर्षमय जीवन
न जाने हो गया क्यों पाप,
जिसका आज हम परिणाम पिञ्जर-बद्ध होकर भोगते हैं।
यही कर लें,
काश वह समृद्धि ही यदि
प्रात से हमको न विस्मृत बना जाती,
ग्रीस और मङ्गोलिया इस ओर क्यों आते ?
प्रवाहित खून की नदियाँ न होतीं,

और हम परतन्त्रता का पाश
अपने गले में क्यों बाँध लेते ?
विभव-लौलुप भावना,
जो खींच लाई थी यवन-दल को यहाँ तक,
हुई मंडला-राज्य का वह शाप बनने में सहायक।
क्या कभी तृष्णा कनक की शान्त हो पाई किसी की ?
यह चिरन्तन प्यास-सी है,
एक ही दो बूँद में कब बुझ सकी जो ?
देहली का तख्त गौरवपूर्ण,
क्या सन्तुष्ट पाकर भूमि थोड़ी हो सका है ?
रक्त-रंजित,
बिना पाये रक्त वह किसको मिला है ?
बिना पाये रक्त वह किसका रहा है ?
उसीके संकेत पर नाचा,
कि जो उसके हृदय की आग को
कर सका शीतल रक्त से।
जब हुआ अकबर देहली के तख्त पर आसीन,
था सम्राट् केवल नाम का,
कुछ जिलों तक ही राज्य का विस्तार था;
आकांक्षा थी किन्तु दुर्दमनीय,
उसकी पूर्ति का विश्वास था,
थी लगन अनुपम कार्य की,
परिणाम पाने के लिए दृढ़ धैर्य था उर में।
लिया सम्पूर्ण शासन हाथ में जिस दिन,
स्व-गुरु बैरामखां को मार,
उस दिन कर दिये प्रारम्भ,

अविरल औ' अथक उद्योग
अपनी प्रबल लिप्सा-पूर्ति के;
मजबूत उसकी शक्ति थी,
सौभाग्य उसके साथ था।
मंडला बचा था मुसलमानी आक्रमण से अभी तक,
ताक़त नहीं थी क्योंकि आगत दुश्मनों में
पार करने की अगम, उत्तुंग विंध्या।
प्रेरणा है किन्तु जिसके हृदय में कुछ कार्य करने की,
असंख्यों विघ्न-बाधा हैं उसे तृणवत।
सिवा इसके
प्रजा के शान्तिमय, स्वर्गीय जीवन की कहानी,
खबर रानी के अकलुषित रूप की,
अवदात नूतन कुन्द जैसा,
और गाथा कल्पनोपरि राज्य के ऐश्वर्य की
थी वायु-सी हो गई सारे देश भर में व्याप्त,
सुन कर जिन्हें कामुकता जगी सम्राट् की।
कर शान्त उत्तर और पश्चिम में उठे विद्रोह,
उसने प्रथम अपनी राज्य-लिप्सा का निशाना
गोंड़वाना ही बनाया।
भेज कर संदेश मानिकपूर के नवयुवक हाकिम को,
दिया आदेश इस उद्देश्य की व्रत-पूर्ति का
करने उचित औ' सफलतायुत कार्य।
"है यह नहीं किंचित कठिन,
अबला कर रही शासन वहाँ पर,
जीत लूँगा मैं सरलता से उसे,"
अभिमान से यह सोच,

लेकर एक सेना शक्तिशाली
इस पहाड़ी राज्य पर
भर कर विजय की लालसा से हृदय,
चढ़ आया अचानक।
यहाँ वैभव से छलकते गोंड़वाने में
किसी को क्या खबर थी,
पद-दलित उत्तुंग विंध्या को किये
आ रहा है दुर्भाग्य उनकी ओर।
जिसकी थी न उनको अभी आशंका तनिक भी
आज वह ही सामने था,
उन्हें हाकिम-श्रेष्ठ आसफ की चढ़ाई का
अश्रुत संवाद अचरजमात्र था !
पर किया अस्वीकार कब रण का निमंत्रण राजपूतों ने
सदा तैयार वे इसके लिए थे।
खबर पाकर आक्रमण की
अपने हृदय के उठ रहे उल्लास को हँसते वदन पर आँक,
सैन्य दल
सज्जित हो समर के साज से,
ले आत्मीयों से विदा,
चल पड़ा अपने शत्रुओं को रोकने।
वे प्रबल आँधी से गढ़ा को नष्ट करने आ रहे थे,
और ये बन घूर्णि
क्रोधित वात को सब ओर से कस पाश में
क्षण क्षण मरण के घाट पर पहुँचा रहे थे।
यवन थे अज्ञात
वन के, पर्वतों के वीथियों, पथ से,
अगर बच सकें गोंडों के विघातक पाश से,

तो कहाँ जायें ?
हुआ आखिर यही,
वे कब ठहर पाये ?
विजय की ले चाह आये थे यहाँ तक,
मरण का भय,
प्राण पर बीती हुई को देखकर भागे;
प्रथम यह आक्रमण सम्पूर्ण असफल ही रहा ।
पर यवन कब विचलित हुए हैं हार से;
गोरी यहाँ पर हार सोलह बार धीरज खो न पाया,
और जब इस देश से वापिस गया;
तब वरण करके ही विजय को,
वीर पृथ्वीराज को निज शरण करके ।
फिर तनिक-सी हार का क्या मोल आसफ़ की नज़र में !
खिन्न, लज्जित और हो संतप्त लौटा,
शोक-दुख में हो नहीं विस्मृत गया वह;
किया उसने संगठन बल और संख्या में
अधिक उपयुक्त सेना का;
समझ कर और समझाकर उसे
गोडों की समर की नीति
दुर्द्धर्ष अपने गुप्तचर दल से करके प्राप्त
मंडला की तरफ फिर से चला ।
निज राजधानी में नहीं,
सिंगौरगढ़ में उस समय दुर्गावती थी ।
खबर पा इस आक्रमण की,
और यह विश्वास करके—
आक्रमण इस बार का कुछ सरल तो होगा नहीं,

सब सैनिकों के शीघ्र ही रण-साज धारण कर
वहाँ एकत्र होने पर
दिया आदेश रानी ने कहा—
'मैं क्या बताऊँ,
क्यों बुलाया है यहाँ पर आज तुमको,
जानते हो तुम सभी अच्छी तरह यह,
कौन-सा संकट तुम्हारे राष्ट्र पर है,
याद हो,
जब कह रही थी
मैं तुम्हारे पूज्य राजा के वचन तुमसे,
बताया था तभी सन्देश उनका—
'शोक है, मैं रह न पाऊँगा,
कि जब ये यवन डाकू विभव-लोलुप
निरंकुश गज से हमें भी रौंदने इस ओर आवेंगे,
मगर तब गोंड चींटी से महागज का मरण बन जायँ,
.....जब तक एक भी जन रहे जीवित,
वे न अन्दर आ सकें इस राज्य के।'
मैं क्या तुम्हें उपदेश दूँ,
आदेश दूँ
समझो इन्हीं शब्दों में सकल कर्तव्य अपना, धर्म अपना,
आज है अवसर,
कि जब तुम मातृ-भू के चिर-ऋणों से कुछ उऋण हो लो।
ओज की अरुणिम प्रभा लेकर वदन में,
गर्व से बढ़ चलो रण की ओर,
'आर्य-जीवन-जाति की जय'
'देश भारतवर्ष की जय,'

प्राण प्यारे गढ़ा की जय',
'नर्मदे, हर जय'
तनिक कर उच्च स्वरे बोलो।
तनिक कर उच्च स्वर बोलो।
बढ़ो, निज शक्ति पर विश्वास रखकर बढ़ चलो,
छूने नहीं दो उन्हें अपने राज्य की सीमा।"
गगन उठ तक चला 'जय नर्मदे, हर'
वीर के नेतृत्व में
दस शत गजों को किये आगे
जा रहे थे दुश्मनों से भेंट करने गोंड उत्तर की तरफ,
सिंगौरगढ़ से तनिक ही आगे मिले वे सैन्य-दल दोनों।
हुआ स्वागत शरों से,
और फिर तलवार की झंकार
तोपों का बधिर करता हुआ-सा तुमुल रव रह रह,
विघातक अस्त्र-शस्त्रों से हुए आहत
जनों का करुण क्रन्दन
भयावहता था बढ़ाता वहाँ के धरती-गगन की।
हाय रे क्या युद्ध के उन्माद में भूले हुए करुणा,
मनुजता की यही तसवीर दूषित!
युद्ध!
यह कलुषित हृदय की पाशविक मन-वृत्ति का बर्बर प्रदर्शन,
सृष्टि का अपमान,
मानव-सभ्यता का नाश केवल।
विश्व उन्नति करे, तो कैसे,
कि जब बाधक खड़ा है मार्ग में रण-देवता ही।
काश! दुनिया में न होते युद्ध

तो प्रारम्भ से चिरकाल तक के
स्वर्ण-युग की कल्पना क्यों कल्पना ही शेष रहती,
सर्वदा को ग्रीस, भारतवर्ष का स्वर्णिम पुरातन
विश्व का सुख-स्वर्ग होता !
किन्तु मानव के हृदय का पाप
संसृति पर बरसता रहा है हरदम
ढहाता कली की मुसकान, फूलों की हँसी को --
जान पर थे खेलते दोनों, यवन भी, गोंड भी,
पर भाग्य की बाजी अभागे गोंड ही हारे ।
पुरानी वही गलती,
जो हमेशा से हुई थी हिन्दुओं से,
और जिससे झुक गया पौरुष विवश सम्मुख सिकन्दर के,
यहाँ पर आज फिर होकर रही वह ।
अग्रणी कुछ पंक्तियों में हस्ति, अश्वों की कतारें,
हो अधिक आक्रान्त अरि के तोप से, तलवार से
निज सैनिकों को रौंदते रण-क्षेत्र से बाहर भगे ।
कोई परिश्रम बिना यवनों के किये ही
क्षति भयंकर गोंड-सेना की हुई,
अधिकांश सैनिक हो गये निःशक्त जारी युद्ध रखने में,
कि कुछ तो हुए आहत,
और कुछ विचलित हुए भवितव्यता के कोप से,
वे हटे पीछे,
और हटते ही गये ।
तब दिवस ढलता जा रहा था,
हरित, अरुणिम ध्वजाओं पर सफेदी का आवरण फैला—
कि अब हो युद्ध सारा बन्द,

कल नव शौर्य से प्रारम्भ करने के लिए।
रण-क्षेत्र में वे सैन्य-दल दोनों मिले फिर दूसरे दिन प्रात
दोनों ही अदम्योत्साह से थे दीप्त—
वे थे हर्ष से उन्मत्त कल की सफलता की याद करके,
और ये भी विजय पाने की प्रबल आकांक्षा से भर हृदय
शिव-सैन्य सा थे नाचते तांडव,
किये अति तुमुल रव;
पूर्वीय दो लघु पर्वतों के बीच की संकीर्ण घाटी पर
किये उस गुप्त वीथी का नियंत्रण,
खड़ी थी रानी,
तनिक से, किन्तु विश्वसनीय वीरों को लिये,
फिर से हुआ प्रारम्भ रण,
लग गई होने तीक्ष्ण तीरों की अस्क वर्षा
चमकने लग गईं असि-बिजलियाँ,
सर्वत्र उड़ते धूम्र से
दिन का उजाला मन्द हो झँपने लगा।
काँपने लगा नभ
सिंहिनी-सी वीर रानी की भयंकर गर्जना से।
और षोडश वर्ष के अभिमन्यु से निर्भीक
वीर कुमार के मर्मान्त भेदी वार से
अरि-यूथ मरने लगे
लेकिन सात शूरों के सदृश
कुछ चुने दुश्मन वीर उसको घेर कौशल से
शिथिल उत्साह-हत करने लगे।
निज को बहाकर स्वेद के मिस, खून के मिस
वीर एकाकी, अनेकों का किये था सामना

पर कहाँ तक ठहरे अकेला
शनैः होकर शिथिल
अनुपम तेजशाली धराशायी हो गया।
यह युद्ध के प्रारम्भ में ही अमंगल
सम्पूर्ण दिन दुर्भाग्य ही बनकर रहा
वे गोंड़ सारे दिन लड़े
लेकिन सशंकित-उर कि-'शायद हार जायें'
और होते साँझ फिर दुर्भाग्य टूटा
तीक्ष्ण शर की अनी बनकर आँख में दुर्गावती के,
पुत्र शोकाकुला रानी
आँख में शर का कठिन आघात पाकर हिल गई
संशय हुआ उस दिन उन्हीं का सत्य.....
जब सन्ध्या घिरी
तो घिरी घन दुर्भाग्य की काली निशा की भूमिका।

———

अमर

"आज तो जल-देवता ही साथ अपने नहीं.
ऐसा कौन-सा अपराध,
जिससे हो गये वे रुष्ट हमसे ?"
कहा हाथीवान ने होकर बहुत चिन्ता-विकल।
"माँ नर्मदा कब रुष्ट हमसे ?
वे हमारी विजय होती देखकर उल्लसित-उर हैं,
नहीं कोई बात आशङ्का भरी, भययुत,
विजय-बाला हमें ही वरण करने आ रही इस ओर।"
रानी ने कहा ज्यों सांत्वना देते हुए शंकित हृदय को
आँख में अड़ती हुई शर की अनी की कटु व्यथा,
निज लाल के असमय-मरण की

हर घड़ी उर में कसकती वेदना
अति कष्ट से अपने हृदय में छिपाती,
रानी खड़ी थी उसी घाटी पर
नियन्त्रित किये सारे सैन्य-दल को।
मातृ-भू की लाज रखने,
प्राण की परवाह तजकर
काल-सा हर एक सैनिक
शत्रुओं के बीच अपना खड्ग-संचालन तड़ित-सा कर रहा था।
मुग़ल-तोपों की भयंकर मार ने,
आकाश में छाये हुए घन-से विषैले धूम्र ने,
निज वीर स्वामी के मरण की
करुण, दुखप्रद खबर ने
सम्पूर्ण सेना को अचानक ही
अचेतन और कुछ उत्साह-हत-सा कर दिया था,
किन्तु बस, क्षणमात्र में ही
एक प्रतिध्वनि-सी उठी प्रत्येक सैनिक के हृदय में—
आज तो जल-देवता ही साथ अपने नहीं,
हों भगवान ही रक्षक हमारी महारानी के,
निगलने को हमें इस ओर भूखी नर्मदा
अति तीव्र गति से आ रही है,
और अगणित दुश्मनों की सैन्य
अपने प्राणघातक वार से
क्षण क्षण हमारे सैनिकों को खा रही है;
कायरों की भाँति हम निश्चेष्ट रहकर खड़े
तनिक-सी ही देर में होंगे;
हो जायँगे कुछ देर में ही ढेर माटी के

हमारी वीर रानी एक,
पर वे तो असंख्यों टिड्डियों से—
आह, क्या होगा ?—
भयानक इस विपद् का ध्यान आते ही,
जगे वे मौत बनकर शत्रुओं की,
किसी छेड़े हुए जंगल-राज से;
कँपने लगी नस-नस, हरे, लघु पात-सी,
पाकर उबलते खून की गति;
लाल सारा तन,
कि जैसे रक्त ही कर नष्ट नस का बाँध,
अब स्वच्छन्द होकर छलक आया हो वदन पर;
आँख से निकली हुई चिनगारियाँ पा ओज मुख का,
शत्रुओं के लिए भीषण वज्र थीं,
अस्तित्व अपना भूल,
सारे गोंड उन कायर मृगों के झुंड पर,
"जय नर्मदे हर" की अमर आवाज ऊँची कर,
बुभुक्षित बाघ से झपटे।
नहीं वे लड़ रहे थे मानवों से,
किन्तु तोपों से निकलती आग से,
जो, दूर, अनजानी जगह से अचानक ही बरस पड़ती थी।
तनिक से गोंड़ कितनी देर तक प्रलयङ्करी आगी सहें ?
वे हर क्षण हतातह हो चले
और तब होकर सशङ्कित युद्ध के परिणाम से,
यह सोच—
जाकर राजधानी,
शक्तिशाली सैन्य का कर सङ्गठन अति शीघ्र लौटूँ—

वीर, विश्वासी जनों को सौंप,
रक्षा-भार उस संकीर्ण पथ का,
चली रानी गढ़-मण्डला की तरफ़।
"जल-देवता ही साथ अपने नहीं, माँ"——
निश्वास भर फिर महावत बोला।
अभी तक नर्मदा जो पार करने योग्य थी,
बढ़ गई थी सहसा वही होकर प्रलय का पूर।
आशा झर गई,
होकर अतीव हताश
रानी ने कहा अति मन्द स्वर में:
'सत्य, हाँ, जल-देवता ही साथ अपने नहीं हैं, ...
लौटो .....चलो अब,.....
कुछ सुना ? लौटो...चलो,
तुम ले चलो मुझको वहाँ उन शत्रुओं के बीच।"
स्वर दृढ़ हो चला था।
"किन्तु माँ मण्डला चली जायें अकेली आप,
एकत्रित युवक-दल को करें,
तब तक यहाँ हम लोग लड़ने के लिए हैं।"
हृदय में साहस किये संचित सहायक कह उठे।
इसके लिए तो अब समय बिलकुल नहीं,
शायद तनिक-सी नाव मुझको वहाँ तक ले जा सकेगी;
किन्तु कितनी देर में।
फिर लौट कैसे आ सकूंगी शीघ्र लेकर सैन्य इतनी।
नहीं, अब मैं नहीं जाऊँगी,
चलो, हम शत्रुओं का सामना चलकर स्वयं भी तो करें।"

स्वर की बहिर्दृढ़ता छिपाये एक अन्तर्वेदना थी।

× × ×

स्वयं दुर्गा का बनी अवतार,
रानी वायु-सी इस क्षण यहाँ
उस क्षण वहाँ पर
दुश्मनों के बीच में लहरा रही थी।
घूमती तलवार का अस्तित्व कोई था नहीं,
हाँ, रोशनी की एक रेखा रक्त में डूबी हुई
उन धूम्र मेघों में सतत झिलमिल किये थी।
जिधर को वह कौंध जाती,
आहतों का हृदय-द्रावक रुदन,
मरणासन्न-प्राणों की अखीरी करुण निश्वासें गगन को चीर देतीं।
देख रानी का पराक्रम प्रबल,
सैनिक-वर्ग का भी जोश द्विगुणित हो रहा था।
खड्ग का प्रत्येक दृढ़ आघात
कितने दुश्मनों को भूमिशायी कर रहा था!
विजय के उल्लास से हर गोंड का दिल भर रहा था।
आक्रमण यह यवन किंचित सह न पाये
शक्ति अपनी खो चली हर घड़ी वह विस्तीर्ण सेना,
ज्ञात यह होने लगा,
अब हिन्दुओं की जीत निश्चित है।
यहाँ जब देखते थे—
स्वप्न उनकी हार अपनी जीत का
तब भाग्य उन पर हँस रहा था।
क्योंकि सहसा

एक तीर अचूक, तीखा
कण्ठ में आ वीर रानी के लगा,
वे नहीं तैयार थीं इसके लिए
मूर्छित हो गिरीं,
पर शीघ्र ही सँभलीं,
शनैः शर के प्रबल आघात की
कटु वेदना बढ़ने लगी थी,
रोकने की चेष्टाएँ सभी निष्फल थीं।
"चलो माँ, चलो
खेमे में तनिक विश्राम कर लो"
स्नेह डूबे नम्र आग्रह से महावत ने कहा।
"जब तक हृदय में एक भी धड़कन रहेगी,
मैं लड़ूंगी।
आज या तो यवन ही
इस विजन, ऊजड़ गोंडवाने पर करेंगे राज,
या फिर, बस हमारी कीर्ति की, स्वातन्त्र्य की
अरुणिम पताका ही रहेगी देश में।
सौभाग्य अपने साथ हो,
रण-चण्डिके का वरद कर रक्षक हमारा हो सदा।
जय नर्मदे हर।"—
हृदय का बढ़ता हुआ उल्लास नभ तक उठ रहा था,
वीर रानी सैनिकों के खून में सञ्जीवनी-सी फूंकती थी,
किन्तु बढ़ते दर्द से वाणी हुई थी मंद,
थी वह सर्वथा असमर्थ करने में सृजन उत्साह का,
फिर वह तनिक-सा सैन्य दल भी तो नहीं था अमर,
कैसे आग की बरसात के सन्मुख ठहरता!

सत्य है यह,
गोंड अपने शौर्य का अनुपम प्रदर्शन कर रहे थे,
सत्य है,
उनके अनोखे शौर्य से अनगिनत दुश्मन मर रहे थे,
किन्तु सागर-से यवन
इन सैनिकों की मृत्यु से चिन्तित नहीं थे,
ये उन्हें थे जल-कनों से,
जो कि होकर वाष्प नभ में खो गये हों।
गोंड लोगों के लिए
प्रत्येक सैनिक का मरण था क्षति भयंकर।.....
तोप की हो लक्ष्य
सेना गोंडवाने की जरा सी देर में ही हो गई मृतप्राय।
अब तो है नहीं सन्देह किंचितमात्र अपनी हार में—
यह जानकर उद्विग्न हो अति
हस्तिवाहक की कमर से खींच तीक्ष्ण कटार
रानी भोंककर अपने हृदय में,
हो गई मृत।
यह घटित क्षणमात्र में ही हुआ,
दुख और भय से सभी स्तम्भित रह गये।
—जब राष्ट्र के अपमान का प्रतिशोध उनके बस नहीं,
यह झूठ,
उतना शौर्य ही उनमें नहीं,
हाँ, परिस्थितियाँ ही नहीं अनुकूल,
यह दुर्भाग्य हिन्दुस्तान का घातक हमेशा से रहा है,
किया अपनी शक्ति भर सब,
किन्तु जब असमर्थ,

तब तो मरण ही साहाय्य होगा।
यह मरण है नहीं कायरता,
हमारी नारियों का शस्त्र उनकी लाज-रक्षा का,
यही अकलंक जीवन का अमर, अवदात है अवसान;
धरकर धैर्य सारे सैनिकों ने यही सोचा—
छू न पायें शत्रु शव भी
नर्मदा-सी पूत अपनी अमर रानी का,
चुने कुछ गोंड ले लें भार शव का,
पास ही रक्षित जगह में उसे दफ़ना दें,
और रण के बाद फिर उनकी क्रिया विधिवत् करेंगे,
(और सारे शेष अपने दुश्मनों से मृत्यु तक लड़ते रहेंगे।)
किन्तु दिनकर ही हुआ जब अस्त,
तब निश्चित घिरेगी कालिमा
वे वीर कुछ ही क्षणों में मरकर अमर, चिर हो गये।

स्मृति

यह भयावह शान्ति, कातर मौन, यह एकान्त
यह विजन विस्तीर्ण, तरु-खग-हीन यह मरु प्रान्त,
दूर-दुर्बल वीथियाँ, जो बढ़ीं सर्पाकार,
और रक्षित किये पथ-तट विषम अश्म-उभार;

सभी कुछ जड़-गात, केवल एक चेतन-प्रान,
धरा का कर स्पर्श नभ पर वही अदृश्य वितान,
वही गति, वह ही अगति, वह गीति और अगीति,
द्वन्द्व सी छूती हृदय, वह भीति और अभीति;

कार्य-रत सी, विजन में क्या धन, कि पहरेदार,
या कि भरमाई हुई-सी खोजती निज प्यार,
सतत-चंचल, काँपती जैसे कि विधवा-हास,
विचल-उर उत्कीर्ण करती दीर्घ, उष्ण उसास;

भग्नता-सी रजच्छायित मलिन कैसा वेश
भ्रमित प्रमदा सो, कि कबरी छुटी, बिखरे केश,
घूर्णि-सी क्यों बाँधती वह रजत रज-कन ढेर,
भयातुर मां ढाँकती ज्यों शिशु भुजा में घेर;

सब अचेतन बीच जो यह चेतना, वह बात,
हो गई जो दीन-कातर पा असह आघात,
अश्रु अरूप जिसके एक युग से मौन,
सींचते हैं यह निरन्तर जीर्ण, जर्जर भौन;

यह स्वयंभू भौनसा रज-कनों का आगार,
अनाकर्षक, असुन्दर माटी बिना-आकार,
करुण-वन जन-शून्य में निस्संग, भग्न विहार,
रुकण-स्मृति का आह ! यह बेढङ्ग नग्नाधार;

करुण-ज्यों स्मिति पोंछतीसी तप्त आंसू-धार,
करुण-हो साकार ज्यों अभिशप्त कोई प्यार,
करुण-आशा-माधुरी का बेसमय-हत गात,
करुण-सुख की तारिका का त्वरित उल्कापात;

बेबसी की मौन बस्ती, वेदना का लोक,
द्वन्द अपने में किये कितना अपरिमित शोक,
किन्तु स्मृति-मन्दिर, न जिस पर है कला का भार,
यही अगुरु समाधि, गौरव का अजर संसार;

मर्त्य के देवत्व का यह एक अमृत-गान,
यह हमारे स्वत्व का अभिनन्दनीय विधान,
यह पराजय में विजय का उच्च-स्वर उद्घोष,
यह महा दुर्भाग्य में भी एक प्रिय परितोष;

यह अमिट आप्रलय-जीवी, व्यर्थ करता नाश,
समय पर सजता हुआ, यह काल का उपहास,
गहन अपनी वेदना पर चल प्रकृति को रोक,
फकता निर्बंध दिग्व्यापी प्रखर आलोक;

इसी पर जाज्वल्य है स्वातंत्र्य-मङ्गल-जोत,
विश्व जिसकी किरन में उन्मुख कि 'श्वस्त उदोत,
यहीं सोये हैं थके दुर्गावती के प्रान,
जन्मभू पर, स्वत्व पर, जिसका अमर बलिदान;

जन्म जिसका विभव-स्वर्णिम-गोद में सुख-हर्ष,
विरोधों के साथ वह जीवन प्रबल संघर्ष,
क्रांति की देवी लिये हर साँस में विद्रोह,
वक्ष में करुणा लिये, मन में लिये निर्मोह;

एक कर में सृजन लेकर, एक में संहार,
दया को भूले हुए भी ले नयन में प्यार,
तुम बढ़ीं-हर कदम पर ले सर्वतोमुख क्रांति,
बढ़ीं, पद-आघात पर कर जीर्ण जीवन-भ्रांति;

और युग-स्रष्टा बनीं युग को नई दे क्रांति
तुम प्रजा के तृषित प्राणों की बनीं चिर-शान्ति,
देवि ! उतरीं स्वर्ग से करने धरा को स्वर्ग,
मां ! हृदय के स्नेह पर पोषित किये शिशु-वर्ग;

सहचरी-अपनी प्रजा के सुख-दुखों के साथ,
नारि-भूले मनुज की पथ दर्शिका दे हाथ,
तुम लड़ीं यम से सती-सी शान्त, पर दुर्द्धर्ष,
उन्हीं की ही कोटि का तो तुम्हारा उत्कर्ष;

उन्होंने पाया पुनः पति निठुर यम को जीत,
जिन्हें खोजा, तुम्हें मन में मिले वे, मन-मीत,
ध्वनित इच्छा-स्वरों में उनके तुम्हारा गीत,
तुम्हारा जीवन बना 'उन मय', यही तो जीत;

शौर्य से जिनने वरण तुमको किया सुकुमारि,
तुम अनन्त सुहाग वालीं उन्हीं नर की नारि,
धन्य प्रिय-पद अनुसरण में तुम्हारी अनुरक्ति,
परिस्थितियों से लड़ीं धीरज धरे, ले शक्ति;

जब तुम्हारा एक दिन सब खो गया आधार,
उमड़ आईं परिस्थितियों की लहर बन ज्वार,
लालसा और पाप ने जब डाकटर गल-बाँह.
लाँघ कर विश्वास ली अकृतज्ञता की राह;

दुश्मनों से और अंतर्द्रोह से लाचार,
था अरक्षित राज्य का औ, शान्ति का दृढ़ द्वार.
सद्यजाता वेदना. नवजात शिशु का भार,
किन्तु मानी नहीं तुमने विषमता से हार;

पाप के, सङ्कोच के. अज्ञान के तम-तार,
विजित तुमने किये देकर स्नेह का सञ्चार,
प्रलय-मेघों-सा भयङ्कर शब्द कर जब नाश,
छा रहा था देश का ज्योतित विमल आकाश;

दाँव पर जब लग चुका था देश का सम्मान.
तुम लड़ीं तम-स्तोम से बनकर तडिच्छ-विमान,
तड़ित-सी चमकीं-तड़ित-सी किन्तु बस क्षणमात्र,
ज्योति में कँप तनिक घनतर हुआ नभ-तम-पात्र;

सदा से हम राह हैं दुर्भाग्य औ' यह देश,
दूर हम से हुआ है स्वातंत्र्य का संदेश,
तभी असफल रहे पोरस और पृथ्वीराज,
खो गई सीसोदियों की शून्य में आवाज;

तभी मंडला पर हुआ जल-देवता का कोप,
एक युग तक हो गया स्वातंत्र्य-रवि का लोप,
किन्तु ऐसी हार में भी विजय की जयकार,
और ऐसे मरण में शत जीवनों का प्यार;

धन्य अयि नारीत्व की युगवंद्य शुभ आदर्श,
धन्य तुम, जिनसे हुआ यह धन्य भारतवर्ष,
धन्य-तुमने प्राण रहते रखी अपनी आन
प्राण रहते रखा तुमने मातृ-भू का मान

राज्ञि ! मानव निबल है, क्या दे तुम्हें प्रतिदान,
पर करेगा वह तुम्हारा गर्व से जय-गान,
अमरता भी धन्य पीकर तव कथा-कीलाल,
धन्य हैं हम आज भी उन्नत हमारा भाल।